वर्ष -४ अंक- ४०
फरवरी २०२२

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित



ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति



फरवरी २०२२

वर्ष–४ अंक–४०,
विक्रम संवत् २०७८
दयानान्दाब्द– १९८
कलि संवत् – ५१२३
सृष्टि संवत् –१,९६,०८,५३,१२२

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(८७३९९७९६३०,
९९९३९७०९४०)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
महर्षि दयानन्द आश्रम
ग्राम सीताबाडी, केलवाड़ा
जिला–बारां (राजस्थान)
पिन कोड –३२५२१६

अनुक्रम

विषय

१. अद्वितीय और अनुपम महामानव (सम्पादकीय)

२. मानवता के ज्योतिर्मय पथ के ज्योतिपुंज

३. Follow Satyarth Prakash (Intro -3)

४. वेद क्रान्ति

५. रोगों से बचाव और संवेदना संचार...

६. जीवन को पूर्ण बनाते हैं वेदों में वर्णित वैभव

७. महर्षि दयानन्द (कविता)

८. वैराग्य का उदय तृष्णा, मोह और स्वार्थ...

ईमेल – aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट – https://aryalekhakparishad.com/
फेसबुक – आर्य लेखक परिषद्

Digital

सम्पादकीय

अद्वितीय और अनुपम महामानव

ईसा की 19वीं सदी, अङ्ग्रेजों के अधीन भारत देश, प्रताड़ित प्रजा, अनेक रूढ़ियों कुरीतियों और अन्धविश्वासों में जकड़ी आमजन की मानसिकता, पारस्परिक फूट और कलह से त्रस्त जन समुदाय, सब प्रकार से स्वाभिमान और आत्मसम्मान खो चुका देशवासी, समाज बिखर कर वर्गो उप वर्गों और कबीलों में बट चुका था। राजे महाराजे कायर, विलासी, शोषक, प्रजापीड़क और अङ्ग्रेज शासकों के दलाल बन चुके थे। व्यापारी और पुरोहित मिलकर स्वर्ग नरक के जाल में फसाकर मिथ्या कर्मकाण्ड के द्वारा श्रमिक और कृषक जनों का सर्वस्व हरण कर रहे थे। आमजन को उसके मौलिक अधिकारों से वञ्चित कर दिया गया था। लोग न अच्छा खा सकते थे न अच्छे वस्त्र पहन सकते थे, ऊँचे आसनों और उत्तम बिस्तरों पर बैठ भी नहीं सकते थे। महिलाएं उत्तम आभूषण और वस्त्र नहीं पहन सकती थीं। शासक, प्रशासक, सत्ता के दलाल और कमीशन एजेंट खुशहाल और मालामाल हो रहे थे। देश के मेहनतकश कमेरे कङ्गाल हो रहे थे। किसी भी बहन–बेटी को उठवा कर हवस का शिकार बना लिया जाता था और किसी की भी सम्पत्ति जबरन छीन ली जाती थी। विरोध करने पर शिर काट लिया जाता था। इसलिए भय के मारे कोई चूं तक नहीं करता था। आमजन अपनी नियति मानकर अपना सर्वस्व खोने को विवश हो चुके थे।

इसी काल में अनेक कामचोर, मुफ्तखोर लोग तथाकथित साधु सन्त और गुरु बनकर लोगों की खून पसीने की कमाई हथिया कर अय्याशी का जीवन जी रहे थे। लोगों को कहते थे कि अपना सर्वस्व तन मन धन हमें अर्पण कर दो और हमारी पूजा करते रहो इसी में तुम्हारा कल्याण होगा। तथाकथित तीर्थों में बुलाकर लोगों को कङ्गाल बनाते रहते थे। किसी को भी पढ़ने लिखने शिक्षित होने का अधिकार नहीं था, ऊँच–नीच छूत छात भेदभाव चरम पर था। इस विषम और विकट काल में अनेक महापुरुषों का उदय हुआ जिन्होंने लोगों को जागरूक करने और सङ्घर्षशील बनाने का प्रयास किया। इसी का परिणाम है कि आज हम सब स्वतन्त्र रूप से सांस ले रहे हैं। इन महापुरुषों में ही एक नाम है ***स्वामी दयानन्द सरस्वती।*** ये उस काल में होने वाले महापुरुषों में सबसे सफल अद्वितीय और अनुपम थे। इन्होंने एक वैचारिक समग्र क्रान्ति का सूत्रपात किया जिसके परिणाम स्वरूप देश स्वतन्त्र हुआ और इसका खोया हुआ स्वाभिमान व आत्मसम्मान पुनः वापस लौटा। स्वामी दयानन्द सरस्वती और तत्कालीन अन्य महापुरुषों में जो बहुत बड़ा अन्तर था वह यह कि प्रायः वे लोग किसी एक वर्ग का ही मार्गदर्शन कर रहे थे, उनका सङ्घर्ष प्रतिशोधात्मक था, गाली गलौज वाला और हिंसात्मक था। उनकी क्रान्ति विदेशी विचारधारा पर आधारित थी। उनमें से प्रायः ब्रिटिश हुकूमत के दलाल, देश भक्ति से विमुख और इस देश में अङ्ग्रेजी राज को सदा बनाए रखने के पक्ष में थे। स्व संस्कृति, सभ्यता, खानपान, वेशभूषा की आलोचना और निन्दा करते थे और विदेशी आचार के पक्षधर थे। जबकि दूसरी ओर स्वामी दयानन्द की क्रान्ति पूरी तरह स्वदेशी सोच पर आधारित थी। वह एक स्वस्थ समाज और राष्ट्र के निर्माण की समग्र योजना प्रस्तुत करने वाली थी। वह स्वदेशी स्वराज्य का आह्वान करती थी। औपनिवेशिक सत्ता की गुलामी से मुक्ति चाहने वाली थी। निज देश की भौगोलिकता पर और आचार विचार पर गर्व करने वाली थी। हर प्रकार की हीन भावना से मुक्त थी। मानवता के शत्रुओं को ललकारने और ताल ठोकने वाली थी। दयानन्द की समग्र क्रान्ति मात्र कुछ लोगों के हित की बात नहीं करती। वह मानव मात्र के उत्थान और कल्याण की योजना तथा क्रियात्मक रूपरेखा प्रस्तुत करती है जिसे अभी तक पूरी तरह समझने का यत्न ही नहीं किया गया। पूर्वाग्रह ग्रस्त स्वार्थी चालाक लोग उसकी उपेक्षा करते रहते हैं। दयानन्द हर प्रकार की हिंसा और राग–द्वेष से परे हटकर संसार के उपकार और वैचारिक आदान प्रदान के माध्यम से लोक शोधन और चरित्र निर्माण की बात करते हैं। पारस्परिक मेलजोल सत्य के ग्रहण, असत्य के त्याग और सब की उन्नति पर बल देते हैं। इसलिए दयानन्द अपने समसामयिक महापुरुषों में अद्वितीय अनुपम और सफल महामानव है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है अतः समाज उस की पहली आवश्यकता है। दयानन्द समाज निर्माण की बात करते

हैं। दयानन्द के आगमन से पूर्व यहाँ कोई समाज नहीं था और वर्तमान में भी कोई समाज नहीं है। समाज मनुष्यों से बनता है परन्तु आज मनुष्य ही नहीं है तो समाज कैसे बन सकता है ? नाम मात्र के मनुष्यों से तो नाम मात्र का ही समाज बनेगा। उससे सच्ची सामाजिकता का फल प्राप्त नहीं हो सकता। संसार भर में सर्वत्र हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं, सिक्ख हैं, यहूदी हैं, बौद्ध हैं, जैन हैं और भी न जाने कौन–कौन हैं परन्तु मनुष्य नहीं हैं। जनसमुदाय वर्गों–उपवर्गों, कबीलों दरकबीलों में बंटा पड़ा है। सबके अपने–अपने अहंकार के झण्डे लहरा रहे हैं। समाज बनाने के लिए इन झण्डों को उतार कर बेरहमी से फेंकना होगा। पहले मनुष्य बनाना होगा। दयानन्द की क्रान्ति का प्रारम्भ यहीं से होता है। दयानन्द मनुष्य को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि –*''मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की, चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुणरहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति और प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे। अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्य रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे। ''* (सत्यार्थ प्रकाश स्वमन्तव्यामन्तव्य)

उक्त उद्धरण को बार–बार पढ़िए और विचारिए कि क्या दयानन्द कुछ हिन्दुओं या तथाकथित ब्राह्मणों का रहनुमा है या सारे संसार का है? यहाँ दयानन्द ने मनुष्य का धर्म बताया है, आंखें खोलकर पढ़ो। दयानन्द कहते हैं कि –*''मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूं कि जो तीन काल में सबको एक सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मत–मतांतर चलाने का लेश मात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।....जो जो आर्यावर्त वा अन्य देशों में अधर्म युक्त चाल चलन है उसका स्वीकार और जो धर्म युक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता न करना चाहता हूं क्योंकि ऐसा करना मनुष्य धर्म से बहिः है''*। वहीं दयानन्द अपना प्रयोजन बताते हैं–*''सबको ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़ प्रीति युक्त कराके सबसे सबको सुखलाभ पहुंचाने के लिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे जिससे सब लोग सहज से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।* वहीं सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ की भूमिका में उन्होंने लिखा कि –*''मनुष्य जाति में बहका कर, विरुद्ध बुद्धि कराके, एक दूसरे को शत्रु बना लड़ा मारना विद्वानों के स्वभाव से बहिः है।''* आर्य समाज के नियमों में समाज का उद्देश्य बताते हुए उन्होंने लिखा–*''संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।''* एक और नियम में लिखा कि –*''सत्य के ग्रहण और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। और ''सबको अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए''*। उक्त उद्धरणों के परिप्रेक्ष्य में दयानन्द को समझने और वैसा प्रदर्शित करने का प्रयत्न आर्य समाज के नेताओं द्वारा कभी नहीं किया गया। फलतः दयानन्द और उनकी क्रान्ति का ध्वजवाहक आर्य समाज आज हिन्दुओं का एक पन्थ बनकर रह गया है और हिन्दू उसे फूटी आंख से भी देखना नहीं चाहते। आर्य समाज आज राष्ट्रीय स्वयंसेवक सङ्घ और भारतीय जनता पार्टी का पर्याय बन चुका है। आर्य समाज के कर्ण धारों ने उसे तथाकथित दक्षिण पन्थ और ब्राह्मणवादी लोगों में शामिल कर दिया है, उसका आंदोलनात्मक स्वरूप सर्वथा समाप्त हो चुका है और उसके अस्तित्व को ही खतरा हो चला है। जबकि दयानन्द न साम्प्रदायिक हैं न तथाकथित ब्राह्मणवादी और न दक्षिणपन्थी न ही वामपन्थी हैं। वे किसी प्रकार भी सङ्कीर्ण सोच वाले नहीं हैं। उन्होंने एक स्वस्थ विश्व समाज निर्माण करने का कार्यक्रम प्रस्तुत किया है। स्वामी दयानन्द ने जिस मनुष्य का वर्णन किया है वह जन्मजात नहीं होता उसे बनाना पड़ता है इसलिए दयानन्द ने वैसे मनुष्य बनाने की प्रक्रिया बताई है।

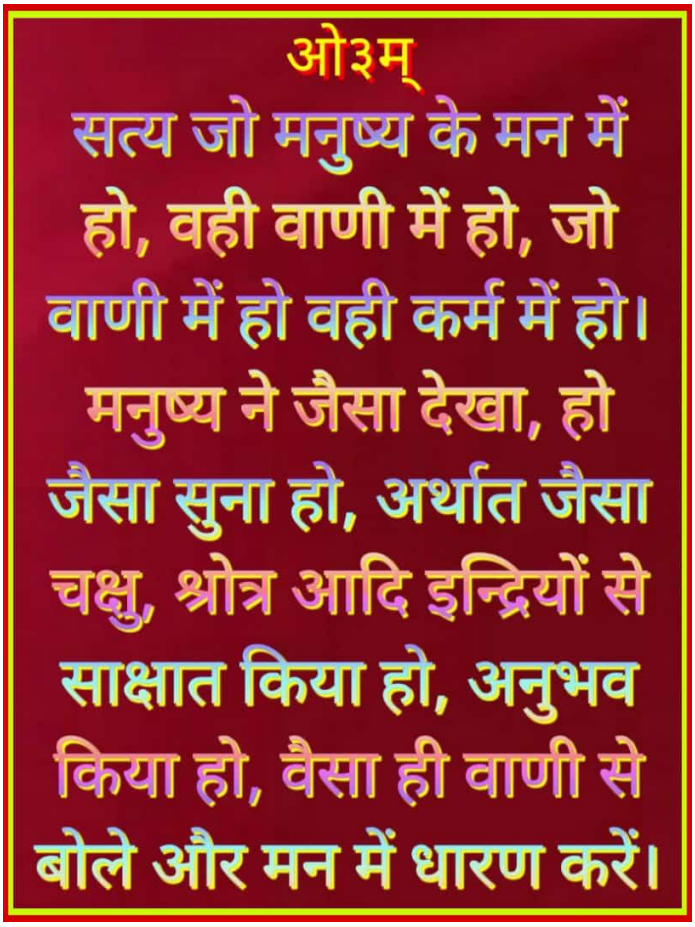
इसके लिए उनकी संस्कार विधि सम्पूर्ण और सत्यार्थ प्रकाश का दूसरा, तीसरा और चौथा समुल्लास पढ़ना चाहिए। वहाँ पर एक उत्तम गृहस्थ और उत्तम सन्तान बनाने की पूरी योजना प्रस्तुत की गई है। सारे संसार के लोग उसका लाभ ले सकते हैं। स्वामी दयानन्द ने जिस भाषा का प्रयोग किया है वह वेद की भाषा है इसलिए उनके शब्दों का वही अर्थ ग्रहण करना चाहिए जिस अर्थ में वे वेद में प्रयुक्त हुए हैं। दयानन्द के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा सवर्ण आदि शब्द वर्तमान के लोक प्रचलित अर्थ वाले नहीं हैं। दयानन्द के अनुसार कोई भी जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या सवर्ण अवर्ण नहीं होता, वह तो गुण, कर्म और योग्यता की बात करते हैं। संसार की सभी भाषाओं में इन शब्दों के ठीक अर्थ करके दयानन्द के सपनों का एक स्वस्थ विश्व समाज बनाने का प्रयत्न होना था जो नहीं किया गया। दयानन्द शिक्षा और औषधियों के माध्यम से संस्कार देकर उत्तम सन्तान निर्माण की प्रक्रिया प्रस्तुत करते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी स्वामी दयानन्द विश्व भर के लोगों को शिक्षित करने की बात कहते हैं। वे मानव मात्र के लिए शिक्षा को अनिवार्य कहते हैं और सबको शिक्षा का अधिकारी मानते हैं। उनके अनुसार अमीर गरीब सबके बालक बालिकाओं को शिक्षित करना आवश्यक और अनिवार्य है। वे राज्य और समाज की ओर से सबके लिए निःशुल्क और समान शिक्षा का विधान करते हैं। नारी शिक्षा पर तो उन्होंने विशेष बल दिया है और पुरुषों के समान ही नारियों को भी विभिन्न कार्यों और पदों पर नियुक्त करने का विधान किया है परन्तु नारियों की शिक्षा और कार्य विभाग नारियों द्वारा ही सञ्चालित किए जाने का आग्रह किया है। राजनीति के क्षेत्र में भी स्वामी दयानन्द की देन विश्व भर के लिए अनोखी है। उसके मूल तत्व हैं पक्षपात शून्यता, न्याय, सत्याचरण, आजीविका, सुरक्षा, चिकित्सा, न्यून से न्यून कर ग्रहण, अपराधी को कठोर दण्ड और उपकारी को पुरस्कार आदि मुख्य हैं। उनका कहना है कि अधर्म से चाहे चक्रवर्ती राज्य ही क्यों न सिद्ध होता हो तो भी सिद्ध न करें सब काम धर्मानुसार करना चाहिए।

दयानन्द जहाँ एक विश्व समाज निर्माण करने को कहते हैं, वहीं वे एक सार्वभौमिक चक्रवर्ती राज्य की भी कल्पना करते हैं, जो सभी देशों के भले लोगों अर्थात् स्वपरिभाषित मनुष्यों के सहयोग से बनेगा, इनको ही वे आर्य कहते हैं। यही सब मिलकर एक विश्व नेता को चुनकर सम्राट पद पर आसीन करते हैं। दयानन्द मात्र एक सुधारक नहीं है वह विश्व में आमूलचूल परिवर्तन चाहता है। मानवता का इतना बड़ा रक्षक और हितैषी दीपक लेकर ढूंढने से भी सारे संसार में नहीं मिलता। कभी एक मुस्लिम शायर ने दयानन्द के लिए लिखा था –

ये आसमाने पीर गर ले हाथ में शम्सो–क़मर।
चक्कर लगाए दरबदर, गाहे अरब गाहे अज़म।
आफ़ाक में कोई बशर आए नज़ीर उसकी नज़र।
है ग़ैर मुमकिन सर बशर ईमान से कहते हैं हम।।

इसका मतलब है कि यह बूढ़ा आसमान अगर अपने हाथ में सूर्य और चन्द्रमा लेकर सर्वत्र चक्कर लगाए तो भी दयानन्द जैसा इन्सान ढूंढ़ पाना असम्भव है, यह हम ईमान से कहते हैं। इस लिए हम कहते हैं कि दयानन्द अद्वितीय और अनुपम महामानव है। इति

– ✍ वेदप्रिय शास्त्री



मानवता के ज्योतिर्मय पथ के ज्योतिपुंज

– ✍ अखिलेश आर्येन्दु

महर्षि दयानन्द के विलक्षण व्यक्तित्व व कृतित्व के बारे में योगी श्री अरविन्द कहते हैं–'' जब मैं दयानन्द के विषय में अपनी भावना को अपने सामने चित्रित करने का प्रयत्न करता हूं और मुझ पर जो उनकी छाप पड़ी है, उसे ठीक–ठीक रूप देने की चेष्टा करता हूं तो प्रारम्भ में ही इस पुरुष के, इसके जीवन और कार्य के दो महान्, सुस्पष्ट और विलक्षण गुण मेरे सामने आ खड़े होते हैं। वे गुण इसे अपने समकालीन व्यक्तित्वों और साथियों से बिल्कुल अनूठा ही प्रदर्शित करते हैं।'' महर्षि दयानन्द की कार्यशैली समकालीन अन्य महापुरुषों से अलग तरह की थी। यही वजह है कि वे सबसे निराले, अनुपम और विलक्षण दिखाई देते हैं। योगी श्री अरविन्द ने महर्षि दयानन्द को जिस रूप में देखा, वह भी एकदम अलग और मौलिक था। यही वजह है कि उन्होंने दयानन्द को किसी भी नजरिए से किसी भी क्षेत्र में कमतर नहीं पाया। श्री अरविन्द के ही शब्दों में –''महर्षि दयानन्द की कार्यशैली बिलकुल भिन्न थी। वे ऐसे मानव थे जिन्होंने अपने आपको वस्तुओं की अनिर्धारित आत्मा में आकार–रहित तौर पर नहीं उँड़ेला था बल्कि वस्तुओं और मनुष्यों पर अपनी आकृति की ऐसी अमिट छाप लगा दी थी जैसे पीतल में मुहर लगा दी गई हो। वे इस प्रकार के पुरुष थे जिनके साकार कार्य उनके आत्मिक शरीर से उत्पन्न हुए उनकी सन्तान ही से थे–सुन्दर और बलिष्ठ तथा प्राण से परिपूर्ण, अपने जन्मदाता पिता की हू–बहू–अक्षत छवि। वे ऐसे व्यक्ति थे जो निश्चित तौर पर और साफ–साफ जानते थे कि उन्हें क्या कार्य करने के लिए यहां भेजा गया है।''

महर्षि दयानन्द का वेदों के सम्बंध में दृढ़ विश्वास था, वेद वह ज्ञान है जिसे पाने के लिए मानव का समस्त चिन्तन–मनन प्रयत्नशील है। ***यानी यस्मिन् विज्ञाते सर्वम् विज्ञातम्।*** जिसे जानने से सब कुछ जाना जाता है। वेद के बारे में श्री अरविन्द का विचार समझने की जरूरत है। इनके विचार समझ लेने से उनके महर्षि दयानन्द के वेद सम्बंधी कार्य भी आसानी से समझे जा सकते हैं। श्री अरविन्द कहते हैं–'' यह दिव्यवाणी है जो कम्पन्न करती हुई असीम में से निकलकर उस मनुष्य के अन्तःश्रवण में पहुंची जिसने पहले से ही अपने आपको अपौरुषेय ज्ञान का पात्र बना रखा था।'' दरअसल, महर्षि दयानन्द ने वेदों के लिए पूर्व और पश्चिमी देशों में फैली भ्रान्तियों, भ्रमों, संदेहों, उल्टी और गलत धारणाओं और मान्यताओं को ही नहीं तोड़ा था बल्कि वेदों के जरिए ही उन्होंने यह साबित करके दिखा दिया था कि यदि दुनिया वेदों के बताए रास्ते, कार्य, विचार, मंत्र और व्यवहार को समझ व मान ले तो दुनिया से हिंसा, नफरत, अन्याय, शोषण, क्रूरता, स्वार्थ, भ्रष्टाचार, व्याभिचार और हर तरह के अंधविश्वास और पाखण्ड दूर हो सकते हैं। यही वजह थी कि महर्षि दयानन्द से शास्त्रार्थ करने वाले और उनके पाखण्ड और अंधविश्वास के खण्डन से चिढ़े लोग भी कहते थे, दयानन्द जो कहते हैं वह ही अंतिम सत्य है, भले ही स्वार्थ की वजह से लोग स्वीकार न करें।

महर्षि दयानन्द का नजरिया देश, समाज, संस्कृति, धर्म और भाषा के सम्बंध में राष्ट्रवादी था वहीं पर आदर्श समाज की स्थापना के सम्बंध मं समाजवादी। उनका राष्ट्रवाद और समाजवाद वेदों से प्रमाणित था, जो सर्वे भवन्तु सुखिनः और सर्वे सन्तु निरामया पर आधारित था। दरअसल, दयानन्द ऐसे युगान्तरकारी महामानव थे, जिनके रोम–रोम में मानवता का कल्याण और सच्चे ज्ञान–विज्ञान और संस्कृति का उत्कृष्ट दर्शन व्याप्त था। उनका हर कार्य समाज, संस्कृति, धर्म, विज्ञान और भाषा को बल देने वाला था। वे नागरीलिपि की जहां वकालत करते हैं वहीं पर उन्होंने हिंदी को 'आर्य–भाषा' कह कर पुकारा और हिंदी में उन्होंने अपने मुख्य ग्रंथों की रचना की। धर्म, संस्कृति और मूल्य उनके जीवन के वैभव भी थे और शोध भी। उन्होंने वेद, धर्म, संस्कृति और जीवन–विज्ञान को तर्क, प्रमाण, विज्ञान और सत्य की कसौटी पर कसकर ही स्वीकार किया।

महर्षि दयानन्द के कार्य, जीवन, धर्म और मूल्यों को समझने लिए यह जरूरी है कि उनके चरित्रबल, आत्मसाधना, वेदविद्या और शिव संकल्प को भी समझना आवश्यक है। गौरतलब है दृढ़व्रती मानव साधारण मानव नहीं होता है। वह युगधर्मी ऐसा महामानव होता है जिसका एक मात्र उद्देश्य सारी दुनिया का

भला करना होता है। उसकी दृष्टि आने वाले सैकड़ों सालों पर होती है। इस लिए उसके कार्य, ज्ञान, विज्ञान, समाज सुधार, धर्मकल्याण और संस्कृति उन्नयन के कार्य उस समय असरदायक तो होते ही हैं शताब्दियों तक मानव जाति को प्रेरणा देने का कार्य करते हैं। महर्षि दयानन्द के कार्य, विचार और उद्देश्य इसी तरह के थे। आज भी महर्षि के जीवन संदेश, दर्शन, कार्य विश्व मानवता के लिए प्रेरणा का कार्य कर रहे हैं। इतना ही नहीं, समाज व शिक्षा सुधार, संस्कृति व धर्म उन्नयन, भाषा, लिपि, स्वदेशी, शाकाहार, स्वावलम्बन, मानव व समाज में सद्गुण प्रतिस्थापना, असहाय और निर्धन समाज के कल्याण और अविद्या को मानव मन से हटाकर विद्या के प्रचार–प्रचार करने जैसे अनगिनत कार्य महर्षि दयानंद ने उस समय किए जब देश अंग्रेजी पराधीनता में जकड़ा हुआ था। 'वेदों की ओर लौटों' का नारा भारतीय संस्कृति, सभ्यता, स्वधर्म, स्वभाषाा, स्वदेशी स्थापना और वैदिक स्वशिक्षा को जन–जन तक पहुँचाने के मकसद से दिया। आज भी यह नारा भारतीय गौरव को हासिल करने और विदेशी गुलामी से पार पाने का हथियार बनाने की बात कही जा रही है। पाश्चात्य संस्कृति, शिक्षा और भाषा की गुलामी से मुक्त होने के लिए 'वेदों की ओर लौटों' का नारा हथियार बन सकता है। पश्चिमी दुनिया के संस्कृत के विद्वान मैक्समूलर ने महर्षि दयानंद रचित ऋग्वेदाभिाष्यभूमिका और उनके जीवन–कार्यों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है– सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य को हम ऋग्वेद से आरम्भ करके दयानंद की 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' तक दो भागों में बांट सकते हैं। गौरतलब है मैक्समूलर वैदिक ग्रंथों को महर्षि दयानंद के मिलने के पहले महत्व नहीं देते थे। यह महर्षि दयानंद के कार्यों का ही प्रभाव था कि मैक्सूमलर जैसा भारतीय धर्म और संस्कृति का आलोचक ने भी वेदों की महत्ता को माना।

महर्षि दयानन्द की दृष्टि अत्यंत व्यापक थी। वह मत, मजहब, सम्प्रदाय और वर्ग–समूह व जाति–समूह से बहुत ऊँचे उठे हुए महामानव थे। विश्व समाज जिस दौर से आज गुजर रहा है, ऐसे में स्वामी दयानन्द के वैदिक विचार अपने आप में इतने उपयोगी, व्यावहारिक और निष्पक्ष हैं कि यदि उन पर गौर किया जाए तो दुनिया की तमाम जटिलताएं, समस्याएं, विसंगतियां, हिंसा, विकृतियां, दुर्वृतियां और अनाचार खत्म हो सकती हैं। लेकिन जरूरत इस बात की है कि हम दयानंद को दयानंद की अंतर–दृष्टि को समझने की कूबत रखते हों। दयानंद की सबसे बड़ी खाशियत यह है कि वे 'बाबा वाक्य प्रमाणम्' को तहस नहस करते हुए कहते हैं कि यदि उनके विचार –किसी भी विषय या संदर्भ के हों यदि तत्कालीन समाज और मानवहित में नहीं समझ में आते तो विद्वान और विचारक मिलकर उसमें सुधारकर लें, जिससे किसी तरह का किसी भी स्तर पर कोई नुकसान न हो। महर्षि दयानन्द के राम–रोम में वेद, भारत, वैदिक राष्ट्रवाद, वैदिक जीवन दर्शन और वैदिक मूल्य समाहित थे। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सभी तरह के हितकारी कार्यों को 'यज्ञ' कहकर प्रतिष्ठा दी।

महर्षि दयानन्द ने भारतीयता को स्वाधीनता, स्वराज्य, स्वदेशी, स्वभाषा, स्वधर्म, शाकाहार और आदर्श समाज निर्माण से जोड़कर देखा। वे सच्चे मायने में एक युगपुरुष, वैदिक ऋषि, स्वराज्य के प्रणेता, सत्य के संस्थापक, स्वराज्य के प्रथम उद्घोषक और वैदिक गुरुकुल प्रणाली के संवाहक थे। दैवत्व और ऋषित्व के मुखमंडल पर दीप्तमान था। अपने हत्यारे को भी पैसा देकर दूर भाग जाने की घटना, उनकी दया और क्षमा का उद्भुत गुण है। वे राष्ट्र, समाज, वेद, जनहित, संस्कृति, भाषा, नारी व दलित कल्याण और विश्व के कल्याण के लिए जीवन भर तमाम परेशानियों के बीच भी कार्य करते रहे।

महर्षि दयानन्द युगधर्मी महामानव जिसने तत्कालीन विद्वत समाज, धर्म के धुरंधरों और विचारकों को ही नहीं उस वक्त के रजवाड़ों को भी नई दिशा दी, वह अपने किसी विचार को रूढ़ी में बाधना कभी अच्छा नहीं समझा। इस लिए दयानन्द एक जहां प्रगतिवादी हैं तो वहीं अत्यंत गंभीर तर्कवादी, जहां वे धर्म को तर्क पर कसकर स्वीकरने की बात करते हैं तो अध्यात्म को अपने अनुभव और क्रिया पर। मानव की भलाई जिसमें हो, दयानंद उस बात को उस कार्य को सबसे बेहतर और हितकारी मानते दिखाई पड़ते हैं। सत्यार्थ प्रकाश में जो भी उन्होंने लिखा उसमें उनका अपने स्वयं के फायदे का कुछ भी नहीं है,, सारा का सारा ज्ञान और तथ्य मानव समाज के सुधार, सुख, शांति, आपसी प्रेम, करुणा, दया, सहिष्णुता, न्याय, अहिंसा की स्थापना, सत्य की जीत और शुभत्व को ध्यान में रखकर ही प्रस्तुत किया। दुराग्रह, आग्रह, स्वार्थ और पक्षधारिता को दूर दूर तक दयानंद के जीवन में हम नहीं पाते हैं।

वह अपने भ्रमण और कार्यों के दौरान यदि मुस्लिम नेताओं के यहां टिकते थे तो ईसाई और पारसी के यहां भी रहकर उपदेश

देते थे। कोई ऐसा व्यक्ति या वर्ग नहीं था जो दयानन्द के बारे में यह कह सके कि उन्होंने उसके साथ भेदभाव किया या अन्याय किया। क्षमा, दया, करुणा, न्याय, धर्म और सत्साहस तो उनके रोम–रोम में पिरोया हुआ था। इस लिए दयानन्द को आज के संदर्भ में हमें उनके समग्र विचारों, कार्यों, व्यवहारों और चरित्र को पूरी तरह निष्पक्ष और अपने आग्रह–दुराग्रह से अलग हटकर समझने की जरूरत है। यदि महर्षि दयानन्द हमें समझ में सही मायने में आ गये तो समाज और संस्कृति तथा तथाकथित धर्म के नाम पर होने वाले पाखण्डों और अनाचारों को बहुत कम समय में खत्म किया जा सकता है। सत्य, प्रेम, अहिंसा और सद्भावना जैसे सदगुणों को समाज का हिस्सा बनाने में महर्षि दयानन्द के विचार आज भी प्रासंगिक और उपयोगी हैं। तमसो में ज्योतिर्गमय के पथ पर चलते हुए वेद के मंत्रों से प्रेरणा लेते हुए समाज को अंधकार से प्रकाश की ओर उन्मुख किया जा सकता है। महर्षि के वेद मूलक विचार उसमें बहुत महत्वपूर्ण हैं।

******

भावना – जो जैसी चीज हो उसमें विचार से वैसा ही निश्चय करना कि जिसका विषय भ्रमरहित हो अर्थात जैसे को तैसा ही समझ लेना; उसको "भावना" कहते हैं।

अभावना – जो भावना से उल्टी हो अर्थात जो मिथ्या ज्ञान से अन्य में अन्य निश्चय मान लेना है जैसे जड़ में चेतन और चेतन में जड़ का निश्चय कर लेते हैं; उसको "अभावना" कहते हैं ।

– *महर्षि दयानन्द सरस्वती*

महर्षि दयानन्द द्वारा यजुर्वेद हिन्दी भाष्य का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद

प्रथम बार महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य का अंग्रेजी अनुवाद आचार्य सतीश आर्य के द्वारा किया जा रहा है। यजुर्वेद का अंग्रेजी अनुवाद लगभग पूरा हो गया है, अभी संशोधन का कार्य प्रगति पर है। आचार्य सतीश जी ऐसे वेदज्ञ और अनुवादक हैं जिन्होंने अपने बल पर वैदिक वांग्मय के उत्थान में अनेक कार्य किए हैं। ज्ञातव्य है विश्व में वेद का अंग्रेजी अनुवाद मैक्स मूलर आदि का पढ़ाया जाता है। आचार्य सतीश आर्य ने महर्षि दयानन्द द्वारा किए गए वेद भाष्य का अंग्रेजी अनुवाद किया है। ज्ञातव्य है अभी तक ऐसा कार्य किसी ने नहीं किया था। अंग्रेजी अनुवाद के इस कार्य से विश्व में महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य को समझने का विद्त जनों को अवसर मिलेगा। जो भी विद्वान् आर्य जन महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य के अंग्रेजी अनुवाद पढ़ना –पढ़ाना चाहते हैं वे आचार्य सतीश आर्य के अंग्रेजी अनुवाद का अवलोकल एक बार अवश्य करें। आचार्य सतीश जी वेबसाइट के माध्यम से अंग्रेजी संस्कृत और हिंदी भाषा में वैदिक वांग्मय को आगे बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। आइए, हम सभी इनके कार्य का अवलोकन करें और इन्हें प्रोत्साहित करें।

FOLLOW SATYARTH-PRAKASH (INTRO-3)

– ✍ Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

'मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है; तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। मनुष्य लोग सत्यासत्य को जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें; क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।'

The above paragraph is from the Introduction to Satyarth-Prakash, authored by Rishi Dayanand. He thus respects a common man, saying that his inner self knows the truth well. The Manusmriti (2-12) says that 'वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः' these four are evidences to the truth.

The soul is intelligent, or able to know. It is receiving facts continuously through senses, mind and intellect, and getting knowledge this way. It is always receiving inspirations from God, and getting knowledge that way too. Knowledge means the correct inference as to what is the truth and what false.

The Vedas clearly preach the truth with regard to God, souls and the matter. The persons studying the Gita, the Upanishads and the Brahmanas sometimes raise different voices about the nature of God, but the Vedas clearly preach that God is one, formless and omnipresent. The mantra 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' from Rigveda (1.164.20) clarifies the difference between the three—God, souls and the matter.

The smritis transform the abstract knowledge of the Vedas into specific rights and duties, rules and regulations, and the act-fruit relations. At present there exist a number of smritis; but only the Manusmriti is dependable irrespective of adulterations; the other smritis having too much admixtures. The real verses from the Manusmriti contain clear explanation of the truth and false, and a clear conception of do's and don'ts.

The 'सदाचार' or the details of good conduct from the personalities lived in the past also indicate the norms of the truth and lessons not to accept the false. Our soul also knows the truth. When it has done sandhya, yajna, Vedas' study, satsang, pranayama and meditation;

and when it is free from lust, fury, greed, attachment, pride, jealousy, lethargy and restlessness; then it knows well as to what is the truth and what false. Both our Rishis, Manu and Dayanand validate soul's intelligence.

Now a very big and very deep question arises that if the soul knows the truth and false, and if every man possesses a soul, then why are men ignorant, bad and sinful? The schools are making boys good and bad. The police and courts are making men good and bad. The religious preachers are making men good and bad. Making good, all right. Making bad, why? Even if there is no helper, the soul has been said to know the truth and false. If there are so many helpers, then why is the man turning to bad?

Rishi Dayanand says in the said Introduction, as translated by Pt. Ganga Prasad Upadhyaya, ''The inner self of man is the knower of truth and untruth; but through selfishness, stubbornness, malevolence and ignorance, he leaves truth and inclines towards untruth.'' When these evils overpower the soul, it becomes bad.

The Universe is so vast and contained. The heavenly bodies are infinite in number, and they are all moving without colliding with one another. Our earth gets light and heat, summer and winter, and winds and rains regularly. Within the Sun, the atoms are splitting and uniting without fail. The animals and vegetables are exchanging oxygen and carbon dioxide automatically. The sea-water is getting evaporated to rise up and then to rain down in a cyclic order. The births and deaths are well-ordered, and so are the crops of grains. The soul knows that this is being done by God, and it feels the deeds of God.

But the Buddhists and Jains say that there is no God. When one argues that such a huge Universe cannot emerge unless created by God, then the Buddhists and Jains counter-argue that the nature's elements—earth, water, fire and air react and counter-react for a long time resulting into the creation of all worldly things as well as of souls. When the non-believers come into power or increase in number, they create confusions, and several individual souls fail to discriminate between truth and untruth. This tends to ignorance, errors and sins. At present such situations can easily been seen in India and other countries.

The soul thinks—God is one; He lives everywhere, so He is omnipresent; so He is formless. This is the right knowledge. But there are Puranas wrongly speaking that God is visible;

His images should be worshipped; He incarnates to kill demons, etc. When one argues that the Vedas describe God to be 'अकायम्'; so God cannot be visible; an image of invisible being cannot be made; a formless being cannot own a body, and cannot incarnate.

Then the Puranas counter-argue that God is almighty, and can show Himself to eyes if He so wishes. They allege that the devotees of pure and perfect devotion can see Him with naked eyes. When a question is put up that the omnipresent being cannot come to a limited place, then the Puranas say that the almighty can do anything and everything. Thus the thinker is made confused, and a pure knowledge of God's nature becomes impossible.

The Vedas do not preach idol-worship. When this point is raised, the Puranic persons argue that in Kaliyuga, the formless God cannot be meditated upon easily, and the idol-worship brings the same result as the formless meditation does. This wrong statement creates confusion, and man fails to know the analysed pure truth.

God is moving the infinite number of heavenly bodies without any difficulty, and if He so decides, He can kill a man in no time. Then why to waste 50 years or more to kill a Ravana? Secondly, the incarnation theory means that God cannot kill a Ravana while remaining God, which is derogatory and insulting the Almighty.

Thus there are untrue persons and untrue books who create confusion in human minds, and obstruct them from knowing the truth. As Rishi Dayanand means, basically the Soul is a knower of truth; but there are a number of bad things that divert it the wrong way. We, the believers in God and readers of Vedas have a duty to perform, and it is leading the society towards the pure truth. ******

विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्।
नहिं बन्ध्या विजानाति गुर्वीं
प्रसववेदनाम्।।

– नीतिसार

अर्थ – एक विद्वान् ही दूसरे विद्वान् के परिश्रम को जान सकता है, साधारण व्यक्ति नहीं। जैसे कोई वन्ध्या (बांझ) स्त्री सन्तान वाली माता को होने वाली भयङ्कर प्रसववेदना को कभी भी नहीं समझ सकती।

परमात्मा के प्रति कृतज्ञता और प्रार्थना का भाव बनाए रखें

डॉ० सत्यकाम आर्य

त्वं नो असि भारताऽग्ने वशाभिरुक्षभिः।
अष्टापदीभिराहुतः।।

– ऋग्वेद– २.७.५

ऋषि – सोमाहुतिर्भार्गवः। देवता – अग्निः।
छन्द – गायत्री

अंग्रेजी अनुवाद – O adorable **Lord**, our sustainer, you are entirely ours when we rear and take care of pregnant cows , castrated, bullocks and octapeds.

अर्थ – प्राणि जगत् का भरण – पोषण करने वाले 'भारत'('भृञ् भरणे') संज्ञा से विभूषित 'हे अग्निवत्' ('अग्निः पवित्रं स मां पुनातु') पवित्रतम् ज्ञानप्रदाता मार्गदर्शक 'अग्रणी प्रभो!' हम निरन्तर आपके गुण कर्म और स्वभावों का चिन्तन करते हुए अधिकाधिक 'पवित्र भावनाओं के योग' से इन्द्रियों के वशीकरणों द्वारा 'आपको पानेवाले' बनते हैं। इसी प्रकार 'हे परमेश्वर!' पाञ्चभौतिक स्थूल शरीर में 'उत्पन्न सोम शक्ति' को अभ्युदय एवं निःश्रेयश की सिद्धि हेतु उसे शरीर में ही 'सेचन करने' से आप हमारे हृदयों में वास कर हमारे हो जाते हैं। 'हे होता' ('यो जुहोति स होता') प्रभु ! 'अष्टापदीभिः' अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि नामक 'योगाङ्गरूप आठ चरणों' द्वारा अपने 'अन्तःकरण' में आहुत हुए – हुए 'आप' हमारे अभिन्न हो जाते हो। 'यम– नियमादिक' योगाभ्यास द्वारा 'इन्द्रियनिग्रह' से 'सोमशक्ति' का संरक्षण ही 'प्रभुमय' होने का उत्तमोत्तम साधन है।

******

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः।।

– ऋग्वेद– २.१.१

ऋषिः – आङ्गिरसः शौनहोत्रो, भार्गवो, गृत्समदः।
देवता – अग्निः। छन्दः– पङ्क्तिः।

अंग्रेजी अनुवाद – O self- effluent, the sovereign **Lord** of men, ever eager to flare up around, your glory is manifested in firmanent waters, around rocks, in forests and in plants of the earth.

अर्थ – 'अग्नि' ('गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति पूजनं नाम सत्कारः') स्वभाव सम्पन्न होने से 'हे अग्रणी प्रभुवर!' ब्रह्माण्ड में अधिष्ठित ज्योतिर्मय 'सूर्य' ('सुवति प्रेरयति कर्मसु चराचरं जगत् स सूर्यः') आदि पिण्ड आपकी अनुपम महिमा को प्रकट करते हैं। 'हे स्वप्रकाशस्वरूप! आप' ''सूते श्रियमिति सूर्यः'' गुणयुक्त होने से 'सर्वतः दैदीप्यमान' हैं। 'हे भुवनेश'! आप ही इन सकल भुवनों में तरल, गैस एवं ठोस अवस्था में सर्वसुलभ 'प्राण रक्षक जलों' से स्पष्टतः 'प्रादुर्भूत' होते हैं अर्थात् ये 'शान्तिप्रद जल' ('जैः जातैः प्राणिभिः लायते आदीयते इति जलम्') आपकी सर्वहितार्थ परम आत्मीयता की 'फलश्रुति' हैं। भिन्न–भिन्न आन्तरिक एवं बाह्य दबाओं तथा प्रभावों के परिणामस्वरूप एक महीतल में निर्मित ये 'पाषाणरूप' विविध प्राकृतिक भूदृश्य 'आपका' ही 'गुणगान' कर रहे हैं। 'हे क्रियाशील मनुष्यों प्रभृति प्राणियों के रक्षक परमेश्वर!' ऊँचे पर्वतों पर आच्छादित ये जीवन रक्षक हरी–भरी एवं सघन 'वनस्पतियाँ एवं परिपक्व ओषधियाँ' आपके 'सर्वज्ञानमयो हि सः' के इस अद्वितीय एवं अतुल्य गुण का 'सस्वर बखान' कर रहीं हैं। 'हे सर्वेश्वर !' आप ही 'सर्वत्र दीप्त' हैं।

रोगों से बचाव और संवेदना संचार की उत्तमता के लिए कर्णवेध संस्कार

– ✍ डॉ. विक्रम कुमार विवेकी

कर्णवेध संस्कार सोलह संस्कारों में एक महत्वपूर्ण संस्कार है। इसकी महत्ता इस बात से लगाई जा सकती है कि यह रोगों के बचाव और इंद्रियगत संवेदना संचार में इसकी भूमिका अत्यन्त महत्व की है। सामान्यतः कन्याओं में कर्णवेध संस्कार का प्रचलन अब भी पौराणिक हिन्दू समाज में है। लेकिन इसकी महत्ता, उपयोगिता और लाभ के बारे में बहुत कम लोगों को पता है। कर्णवेध कानों में आभूषण पहनने के लिए किया जाता है, लेकिन इसके स्वास्थ्य और संवेदना संचार के लाभों को शायद ही कोई जानता हो। वैदिक परम्परा में संस्कारों की कर्मकाण्डीय महत्ता और लाभ कई तरह से है। इन्हें समझने की आवश्यकता है। इसलिए कर्णवेध को मात्र आभूषण पहनने की जगह वाला बनाने वाला केंद्र नहीं समझना चाहिए। पुरुषों में हर्निया और हाइड्रोसिल की समस्या अनेक लोगों में आयु के साथ देखी जाती है। लेकिन उन पुरुषों में यह रोग नहीं होता, जिनका कर्णवेध हुआ रहता है। शास्त्र विधान के साथ कर्णवेध संस्कार करना–कराना और यूं ही कान छेदने वाले से करा देना, दोनों में बहुत अन्तर है। शास्त्र के विधि–विधान से कर्णवेध कराने से जो लाभ होता है, वह यूं ही कभी भी, किसी से कराना, दोनों में वह अन्तर है जो सामान्य लोगों को समझ में नहीं आता। प्रयास यह होना चाहिए कि समय पर इस संस्कार को कराना चाहिए। इसका प्रभाव संतान पर कब और कैसे होता है, इसे जानना हो तो गृह्यसूत्रों का अध्ययन करना चाहिए। लेख के लेखक डॉ. विवके कुमार विवेकी वेदों के मर्मज्ञ हैं। संस्कार स्तम्भ लेख उन लोगों के लिए अधिक उपयोगी है जो सनातन परम्परा में संस्कारों के लाभ और उपयोगिता को नहीं जानते। – *सम्पादक*

कर्णवेध से तात्पर्य है–कान को बींधना। यह नवम संस्कार है। कात्यायन गृह्यसूत्र के अनुसार जन्म के पश्चात् तीसरे या पांचवे वर्ष में इस संस्कार को किया जाता है। आयुर्वेदीय ग्रंथ सुश्रुत के सूत्रस्थान के सोलहवें अध्याय में इस संस्कार का महत्व–उल्लिखित है। दक्ष सुनार के द्वारा कान में छेद करवाने से हर्निया और हाइड्रोसिल से बचाव होता है। विध्येदन्त्रवृद्धिनिवृत्तये (सुश्रुत 16/1) वहां पर यह उल्लेख है–रक्षाभूषणनिमित्तं बालस्य कर्णौ विध्येत् । इससे स्पष्ट होता है कि यह संस्कार कुछ रोगों से शरीर–रक्षा व आभूषण पहनने के निमित्त है। कर्ण–छिद्र में स्वर्ण आभूषण की रगड़ से एक विशेष प्रकार की विद्युत् लहर शरीर में भेजी जाती रहती है। चुम्बकीय इलाज प्रणाली में इस तथ्य का महत्त्व जाना जा सकता है। कान में पहने आभूषण के सेफ्टी बाल द्वारा जननेन्द्रिय पर नियंत्रण प्रभाव जारी रहता है। इसके लिए एक्यूप्रेशर विद्या व उसकी इलाज–प्रणाली गवाह हो सकती है। लघुशंका (पेशाब) करते समय यज्ञोपवीत के धागों को जो कान के चारों ओर कस दिया करते हैं, उस क्रिया का भी यही प्रयोजन माना जाता रहा है।

इस संस्कार को करते समय गृह्यसूत्रों में जिन मंत्रों का विनियोग किया गया है उनसे कर्णवेध का तात्पर्य केवल 'कान–बींधना' ही नहीं है अपितु वैदिक ध्वनियों, प्रवचनों, उपदेशों व प्रेरणाओं से भी कर्णेन्द्रिय को प्रभावित करना है। विनियुक्त वैदिक ऋचा है –

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।

(यजु.25/21)

हम कानों से भद्र सुनें, आंखों से भद्र देखें, सात्विक, सुपाच्य व पौष्टिक भोजन से स्थिर अंगों वाले शरीर को नीरोग रखें तथा देवों जैसी सुखद व दीर्घ आयु को प्राप्त करें।

सुश्रुत संहिता के उन्नीसवें अध्याय में अण्डवृद्धि के सात प्रकार उल्लिखित हैं– वातज, पित्तज, रक्तज, श्लेष्मज, मेदोज, मूत्रज व अन्नज। वहाँ निर्देश है कि अन्त्रज अण्डवृद्धि का रोग कान बींधने से नहीं होता है। भावी अन्त्रवृद्धि का रोग कान के ऊपर कान का छोर छोड़ कर व्यत्साय से नस को बींधने से अन्त्रवृद्धि निवृत्त होती है। दाहिनी तरफ की वृद्धि हो तो बायें कान की ओर तथा

बाई तरफ की अण्डवृद्धि हो तो दाहिने कान की नस को बींधे। बालिका के भी कर्णवेध के साथ नासिका के भी वेधन से उस के यौन सम्बंधी रोगों के निवारण में सहायता मिलती है तथा इन छिद्रों में आभूषणों के प्रयोग से जहां स्वर्ण आदि धातुओं की विद्युत लहरें स्वास्थ्यवर्धक सिद्ध होती हैं वहां ये आभूषण उसके सौन्दर्यवर्धक भी होते हैं।

आज स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद यह संस्कार प्रायः विलुप्त आज भी प्रचलित है, वह भी बालिकाओं के लिए। आज युग बदला है, करवटें बदली हैं, सब कुछ बदला है तो ये संस्कार भी जीवित नहीं रह सके। वैसे कर्णवेध संस्कार की चर्चा केवल पारस्कर गृह्यसूत्र व बौधायन गृह्यसूत्र में ही है। अन्य गृह्यसूत्र इस विषय पर मौन हैं। सुश्रुत का प्रकरण अन्त्रवृद्धि को रोकने की ओर इशारा करता है। आज के सौन्दर्य प्रिय एवं फैशन परस्त लोगों को अपने नाक या कान बिंधवाकर नककटा या कनकटा कहलवाना पसंद भी नहीं होगा। बेशक इस संस्कार से होने वाले स्वास्थ्य–लाभ से उन्हें वंचित रहना पड़े। अस्तु, गहन अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह 'कर्णवेध' रोग विशेष के लिए 'उपचार' प्रक्रिया' है जिसे कुछ प्राचीन आचार्यों ने संस्कारों में परिगणित कर दिया। इस संस्कार की सुरक्षा के द्वारा इस संस्कार से होने वाले लाभ अनुसन्धेय हैं।

इति

******

आर्ष क्रान्ति पत्रिका के लिए आर्य लेखक बन्धु अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ भेंजे।

आर्ष क्रान्ति के सुधी पाठकों से

समाज सुधार, संस्कृति उन्नयन और धर्म जिज्ञासा क्षेत्र की अनेक पत्रिकाएं सोशल मीडिया पर आपने देखी और पढ़ी होगी । आर्ष क्रांति पत्रिका का तेवर और स्वरूप कैसा है इसे जानने की जिज्ञासा आपके मन में पैदा होती है, तो यह समझना चाहिए आप एक विचारवान और जिज्ञासु किस्म के बुद्धिमान व्यक्ति हैं । हमें आप जैसे क्रांतिकारी और प्रगति गामी विचारवान व्यक्ति का साथ चाहिए। फिर देर किस बात की । नीचे लिंक पर जाइए और फार्म भर कर हमें भेज दीजिए। अब आप जुड़ गए हैं ऐसी संस्था और पत्रिका से जो एक आदर्श समाज, उन्नतशील संस्कृति और मानव मूल्यों के धर्म की स्थापना के लिए कृतसंकल्प है । आप एक शुभ संकल्पवान व्यक्ति हैं और यह पत्रिका भी शुभ संकल्पों को मूर्त रूप देना चाहती है, एक आदर्श समाज निर्माण में हमारी संस्था और पत्रिका से जुड़कर आप अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं । आपका हमें इंतजार रहेगा।

इस लिंक पर क्लिक करके यह फार्म अवश्य भरें

http://bit.ly/aarshkranti

नोट – फॉर्म को भरने के लिए अपने मोबाइल / कम्प्यूटर में इन्टरनेट अवश्य चालू रखे

जीवन को पूर्ण बनाते हैं वेदों में वर्णित वैभव

– ✍ अखिलेश आर्येन्दु

वेदों में जहां ज्ञान–विज्ञान, सृष्टि निर्माण, संस्कार, व्यवहारर आश्रम व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, योग, धर्म, अध्यात्म और राष्ट्र सम्बंधी तमाम विषयों का सूत्रवत वर्णन किया गया है वहीं पर धन–सम्पति, प्रजा, सद्गुण, शुभ संकल्प, आत्म विज्ञान, जीवन के चारों पुरुषार्थ और जीवन व प्रकृति प्रदत्त वैभव का उपयोगी और तर्कसंगत वर्णन किया गया है। अथर्ववेद का यह प्रसिद्ध मंत्र जिसमें मानव के कल्याण के लिए वेदमाता से सब कुछ देने की प्रार्थना की गई है जिससे मानव मोक्ष प्राप्त कर अपने परम उद्देश्य को हासिल कर सके। अथर्ववेद का यह प्रसिद्ध मंत्र *ओम् स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।।* (अथर्व 19.71.1) ईश्वर का उपदेश है–हे मानवो! इष्टफल देने वाली, ज्ञानमयी वेदवाणी मेरे द्वारा प्रशंसित की गई है। हे विद्धान् लोगो! यह वेदवाणी द्विजों (विद्वानों) को पवित्र करने वाली है। आयु, प्राण, सुप्रजा, गौ, आदि पशु, कीर्ति, धन और वेदाभ्यास के देने वाली है, इसको द्विजों यानी ज्ञानियों में आगे प्रचारित करो। इसके द्वारा हासिल शुभ कर्मों को मुझे अर्पण करके तुम ब्रह्मलोक को प्राप्त करो।

वेद में वैभव धन–दौलत, ख्याति, सदगुण, मूल्य, ज्ञान, सम्मान, चरित्र की उच्चता, सत्य का पालन, यथायोग्य व्यवहार, सब के हित की कामना और आत्मिक उन्नति करते हुए मोक्ष हासिल करने जैसे तमाम संदर्भों को समाहित किए हुए है। यूं तो वैभव का मतलब धन–दौलत और सुख देने वाले संसाधनों से मालामाला होना होता है, लेकिन जीवन की पूर्णता वेद के मुताबिक महज सुख के साधनों और संसाधनों को हासिल कर सुखी होना नहीं है। इसलिए जहां ऐश्वर्य को धन–सम्पति कहा गया है वहीं पर सद्गुणों को ऐश्वर्य बताया गया है। वेद में दोनों को हासिल करना और दोनों को संतुलित करके जीवन के परम लक्ष्य 'मोक्ष' को हासिल करने के लिए परामर्श दिया गया है। धन–सम्पति के लिए ऋग्वेद में कहा गया है, दरिद्रता का पहला दुर्गुण यह है कि वह इंसान को अनुदार और अदानी बना देती है। व्यक्ति में हीन भावना, निरुत्साहस, उन्नति न करने की भावना, लाचारी व दीनता भर जाती है। इसलिए वेद में कहा गया है कि हे दरिद्रता! तू बस्तियों को छोड़ पहाड़ और जंगलों में चली जा। गौरतलब है संसार में वैभव के अभाव ने करोड़ों लोगों को पशुवत् जिंदगी जीने के लिए मजबूर किया है। वेद में प्रार्थना करते हुए कहा गया है – *वयं स्याम पतयो रयीणाम्* यानी हमारे समाज के सभी लोग ऐश्वर्यशाली हों। और इतना ही नहीं वैभव हासिल करने के परामर्श के साथ अथर्ववेद में कहा गया कि *मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम्।* धर्नाजन की योजनाएं मेरे मस्तिष्क से आविर्भूत हों और मैं अपने बराबर वालों में उनका नेता बनकर रहूँ। एक दूसरे मंत्र में कहा गया– *नाभिरहं नाभिः समानानां भूयासम्।* यानी मैं ऐश्वर्यों का केंद्र बनकर रहूं, अपने समकक्षों की गतिविधियां भी मेरे चलाने से चलें।

वैभव से मालामाल होने के परामर्श के साथ वेद में यह भी कहा गया कि धन–दौलत, ख्याति और संसाधनों से मालामाल होने के बावजूद धन 'सब–कुछ' नहीं है। इसलिए वेद में धन को नियंत्रण में रखने की सलाह दी गई है। यही वजह है कि वैदिक संस्कृति में श्रम की तमाम खूबियां बताई गई हैं। अथर्ववेद में कहा गया है– *कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहिताः। यानी मेरे दाएँ हाथ में श्रमशीलता है तो सफलता मेरे बाएँ हाथ का खेल है।* कहने का भाव यह है कि वैभव हासिल करने का रास्ता मेहनत से होकर गुजरना चाहिए। वेद में कहा गया है कि व्यापार में नियम (ऋत) और सत्यनिष्ठा होनी ही चाहिए। क्योंकि नियम और सत्यनिष्ठा के बगैर इक्ट्ठा किया हुआ वैभव या कमाया हुआ धन उसी तरह त्यागने के काबिल है जैसे गुणहीन व्यक्ति का साथ। एक बात वेद की समझने वाली है, वह है वैभव इकट्ठा करने के साधन की। वेद में कृषि–कर्म को सबसे 'उत्तम' माना गया है। क्योंकि कृषि सबसे अधिक मेहनत वाली और सबको अन्न व फल–फूल देने वाली होती है।

वेद में वैभव का दूसरा विशेष मायने सद्गुण है। सद्गुण यानी मानव मूल्य। दया, करुणा, न्याय, प्रेम, परहित, अहिंसा, सत्य, धैर्य, शुभ संकल्प, सत्साहस, सहिष्णुता और दान। धन–दौलत

हासिल करके यदि मनुष्य ने सद्गुण रूपी वैभव नहीं कमाया तो वह कई ऐसे तमाम तरह की बुराइयों, खामियों, आदतों, विचारों, कार्यों और व्यवहारों को अपना लेता है जिससे उसका सर्वनाश हो जाता है। इसलिए वेद में दोनों तरह के वैभवों को कमाने और संतुलित रखने की सलाह और उपदेश दिया गया है। ऋग्वेद के मंत्र में कहा गया है, मानव को ऐसे सद्गुणों से मालामाल होना चाहिए जिससे इहलोक और परलोक में सुखी व सफल हों। वैदिक वांगमय के कई सूत्र ऐसे हैं जिसमें मनुष्य की पूर्णता किस कर्म, व्यवहार, विचार, संस्कार और गुणों से होती है का अत्यंत हितकारी और तर्कसंगत वर्णन किया गया है। वेद भगवान् कहते हैं कि मानव को चाहिए कि वह सद्गुणों से मालामाल हो, सत्य–अहिंसा का पालन करते हुए, नियमानुसार अपने कर्तव्य करते हुए, कठिन परिश्रम के जरिए कार्य करते हुए अपने जीवन को सफल बनाए। शतपथ ब्राह्मण में देव और मनुष्य के गुणों को बताते हुए कहा गया है– सत्यं वै देवाः, अनृतं मनुष्याः। यानी देवों का जीवन त्यागमय सत्य का पर्याय होता है, लेकिन मानव का जीवन कई तरह के दुर्गुणों और दुर्बलताओं के कारण कई बुराइयों से युक्त होता है। यदि मनुष्य को देव बनना है तो उसे देवों की तरह ही सद्गुण रूपी वैभव से मालामाल होना होगा।

ऋग्वेद में जीवन को वैभव से युक्त और सुखी बनाने के लिए उपदेश देते हुए कहा गया है, हे मानवो! वैभव अर्जित करो, लेकिन ऐसा धन या वैभव ही अर्जित करो जिससे जीवन सफल हो जाए। ऐसा धन इकट्ठा करो जो बहुत दिनों तक टिकने वाला हो यानी धन कमाने के साधन पवित्र होने चाहिए। साथ में यह भी कहा गया है कि वैभव धन–दौलत और सद्गुण दोनो को बाँटते रहो। इससे तुम्हारा भी विकास (सामाजिक, आत्मिक, बौद्धिक, मानसिक और अलौकिक) होगा और जनहित व प्राणीहित भी होता जाएगा। वेद में कहा गया है, वैभव हासिल करके इतराने की जगह स्वावलम्बी और सहनशील बनना चाहिए। ऐसा पवित्र धन ही अर्जित करना चाहिए जो समस्याओं और दुखों को दूर करने वाला हो और धन हासिल कर विजेता जैसा उत्साह बनाए रखते हुए सभी को धन्यवाद करते हुए परमात्मा को धन्यवाद करना प्रतिदिन न भूलें। वेद में वैभव के लिए 'रयिम्' शब्द आया है। एक बात वेद में खास कही गई है वैभव की सम्पन्नता के लिए वह है वैभव पाकर दीनता या हीनता से ऊपर उठ जाना चाहिए। वैभव पाकर 'मद' यानी अहंकार से भर नहीं जाना चाहिए, बल्कि ईश्वर को धन्यवाद करते हुए सबके साथ यथायोग्य व्यवहार और उसका सदुपयोग ही करना चाहिए। जैसे बादल सागर से जल लाकर बगैर किसी भेदभाव के सबके कल्याण में वर्षा करते हैं, ऐसा ही वैभव हासिल कर मानव को भी करना चाहिए। इससे ही दैवत्व और मोक्ष का रास्ता प्रशस्त होता है। ******

www.vedyog.net

योगदर्शन के प्रथम पाद – समाधिपाद पर योगसूत्रों और उनके व्यासभाष्य पर आधारित ५० प्रश्नों की प्रश्नमाला हमारी www.vedyog.net website पर online test के रूप में उपलब्ध है। हम हिन्दी एवम अंग्रेजी दोनों माध्यम से परीक्षा दे सकते है। इसमें हर प्रश्न के उत्तर हेतु ४ विकल्प दिए गए हैं। जिसमें आपको सही विकल्प को चुनना है। परीक्षा के माध्यम से हम अपने योगदर्शन से संबंधित ज्ञान की स्थिति का

रैदास जन्म के कारणै, होत न कोई नीच

संत रविदास या रैदास भक्तिकालीन संतों व कवियों में ऐसे चमत्कारी महापुरुष हैं जिनके चमत्कार की अनेक दन्त कथाएं और जन श्रुतियां आज भी पढ़ने व सुनने को मिलती हैं। इन जनश्रुतियों में उनके जीवन और चमत्कारों की कितनी सच्चाई निहित है, कहना मुश्किल है, लेकिन इतना माना जा सकता है कि वे एक पहुंचे हुए संत और समाज सुधारक थे। उन्होंने कहा, मनोवांक्षित जन्म किसी के वश की बात नहीं है। जन्म ईश्वर के हाथ में है। यदि सभी ईश्वर की संतान है तो, जन्म के आधार पर भेदभाव करना ईश्वर की व्यवस्था को नकारने जैसा है। वे कहते हैं–रैदास जन्म के कारणै, होत न कोई नीच। नर को नीच करि डारि हैं, औछे करम की कीच।। ऐसा सत्साहस जन्मगत जाति के खिलाफ कबीर ने किया या रविदास ने।

संत रविदास ने तपोबल से सिद्धियां हासिल कीं। चमत्कार किए, लेकिन कभी अहंकार नहीं किया। उन्होंने घृणा का प्रतिकार घृणा से नहीं, बल्कि प्रेम से किया। हिंसा का हिंसा से नहीं, बल्कि अहिंसा और सदभावना से किया। इस लिए वे समाज के प्रत्येक व्यक्ति के प्रेरणा स्रोत बनें। समाज में उन्होंने बिना किसी दिखावे के अपनी बात कबीर की तरह कही। यह संयोग ही कहा जाएगा कि कबीर और रविदास दोनों के कार्यकाल का समय लगभग एक ही है। दूसरी बात, दोनों ने समाज को एक नई राह दिखाई और कुरीतियों को दूर करने के लिए सच और साहस को आधार बनाया। संत रविदास को वेदों पर अटूट विश्वास था। वे कहा करते थे– भले ही मुसलमान शासन के छाए में उन्हें रहना पड़ रहा है, लेकिन वह वेद पढ़ने से स्वयं को नहीं रोक सकते हैं। यही कारण है उन्होंने जो कुछ भी कहा, वह वेदों पर ही आधारित होता था।

कबीर की तरह रविदास वैदिक धर्म और वेद को कमतर नहीं ठहराते, बल्कि वे वेद को पढ़ने का उपदेश देते हैं और वेद वाणी का प्रचार भी करते हैं। वे कहते हैं–''जन्म जात मत पूछिए, का जात और पाँत। रैदास पूत सम प्रभु के कोई नहिं जात–कुजात।। हताश या निराश होने से समाज में प्रचलित बुराइयों, पाखंडों, अंधविश्वासों और कुरीतियों को खत्म नहीं किया जा सकता। संत रविदास इस बात को बखूबी जानते और मानते थे। इसलिए उन्होंने वेदों को पढ़ा और पढ़ने पर जोर दिया। वैदिक गुण, कर्म और स्वभाव के द्वारा निर्धारित वैदिक वर्ण व्यवस्था जहां समाज के लिए कल्याणकारी है वहीं पर जन्मगत जाति व्यवस्था समाज के लिए अभिशाप। रविदास ने साहस कर पूछा, किस कारण से कोई ऊंचा माना जाता है और किन कारण से नीच समझा जाता है–जबकि सभी ईश्वर के बनाए हैं। वे पूछते हैं–''एकै माटी के सभै भांडे, सभ का एकै सिरजनहार। रैदास व्यापै एकौ घट भीतर, सभ को एकै घड़ै कुम्हार।।

वैदिक वर्ण व्यवस्था में व्यक्ति के गुण, कर्म और स्वभाव को महत्त्व दिया गया है। संत रविदास भी इसी व्यवस्था को उत्तम समाज के लिए बेहतर मानते हैं। वे गुण, कर्म व स्वभाव के आधार पर बांह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का निर्धारण करते हुए कहते हैं– ''ऊंचे कुल के कारणै ब्राह्मन कोय न होय। जउ जानहि ब्रह्म आत्मा, रैदास कहि ब्राह्मण सोय।।'' इसी तरह क्षत्रिय उसे मानते हैं जो दीन–दुखी के लिए अपना प्राण न्योछावर करने के लिए तैयार रहे। ''दीन–दुखी के हेत जउ वारै अपने प्रान। रैदास उह नर सूर कौ, साँचा छत्री जान।। वैश्य उसे मानते हैं जो सच्चाई से धन कमाए और सच्चाई का सौदा करे। ''रैदास वैसा सोई जानिए, जउ सतकार कमाय। पून कमाई सदा लहै, लौटे सर्वत सुखाय। और शूद्र वह है जो अपने कर्म से पवित्र हो और कभी कुमार्ग की ओर न बढ़े। ''रैदास जउ अति पवित्र, सोई सूदर जान। जउ कुकरमी असुधजन, तिन्ह ही सूकर मान।।

संत रैदास की वाणी से प्रतीत होता है कि उन्होंने मांसाहार, अनैतिकता, धनलिप्सा, दुराचार को भी असामाजिक घोषित किया। उन्होंने सभी तरह की धार्मिक संकीर्णताओं, रूढ़ियों भेदभावों का विरोध करते हुए कहा, इस तरह की प्रवृतियों से समाज कमजोर और अपवित्र बनता है। उन्होंने मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे और चर्च का महत्व न देकर व्यक्ति के बेहतर कर्मों को महत्वपूर्ण माना और ईश्वर के लिए हृदय की पवित्रता को जरूरी बताया। वे कहते हैं–''का मथुरा का द्वारका, का काशी हरिद्वार। रैदास खोजा दिल आपना, तउ मिलिया दिलदार।। बाह्य आडम्बरों की खिलाफत करने के कारण समाज में अनेक लोग उनकी निंदा करने लगे थे, लेकिन उन्होंने निंदा की कभी परवाह नहीं की। उन्होंने हिंदू व मुसलमानों में भावात्मक एकता स्थापित करने के प्रयास किए। समाज सुधार और समाज सुधारक में स्वतंत्र चेतना का बहुत महत्व है। सामज में व्याप्त बुराइयों, पाखंडों, शोषण और भेदभाव के खिलाफ आवाज उठाने में स्वतंत्र चेतना की भूमिका अहम होती है। यही वजह है कि संत रविदास ने जो समाज, राष्ट्र और संस्कृति के उन्नयन में नुकसानदायक पाया, उसका उन्होंने खुलकर विरोध किया। इस तरह एक साधक, साधु, योगी, समाज सुधारक, कवि और सिद्ध के रूप में संत रविदास आज भी मानव समाज के लिए प्रेरक, शिक्षक, उपदेशक, मानव मूल्यों के रक्षक और अप्रतिम समाज यौद्धा के रूप में दिखाई पड़ते हैं। ******

महर्षि दयानन्द

हे भारत वसुधा के गौरव! हे वेद–सुधा रस के प्रपात!
आक्रांत रूढ़ि–रोगों से क्षत–विक्षत समाज हित मलय वात!
हे पावनतम वैदिक संस्कृति के नगपति जैसे महास्तंभ!
हे अंधकार से घिरे देश में नई ज्योति के समारंभ!
कर दिया असंभव को संभव ऋषिवर तुमने बलिदानों से।
चेतनता के निर्झर फूटे, जड़ताओं की चट्टानों से।।

ये देश बना था धर्म–भीरु उज्ज्वल अतीत को बिसरा कर,
अज्ञान–तिमिर में भटक रहा था, पाखंडों को अपना कर,
वरदान रूप तुम प्रकट हुए, लेकर वेदों का तत्व–ज्ञान,
दिनकर की किरणों–सा तुमने प्रकटाया फिर स्वमिर्णम विहान,
तुमने आत्मा के अमरदीप में भरा स्नेह, बाती डाली।
सपनों के वन में बोल उठी आशा की कोकिल मतवाली।।

जय! साहस के मार्तण्ड प्रखर, जय भवसागर के महासेतु!
जय! दिव्य चेतना के शिखरों पर उड़ने वाले विजय–केतु!
जय! हे नरता के महाकाश, हिन्दू संस्कृति के कर्णधार!
आसेतु हिमाचल वेदध्वज फहराने वाले ऋषि उदार!
जय हो ऋषियों के ओज तेज, जय हो मुनियों के अमर ज्ञान!
जय ध्वस्त ग्रस्त मानवता के प्रश्नों के उज्ज्वल समाधान!

निज लक्ष्य–प्रप्ति के लिए लगाई तुमने प्राणों की बाजी,
हो कर परास्त लौटा, जो आया पोप या कि मुल्ला–काजी,
जो बना प्राण–घातक उसको भी विहँस क्षमा का दान दिया,
शरणागत दानव को तुमने, मानवता का वरदान दिया,
देवत्व मूर्ति तुम दया और आनंद लिए उर में अमंद।
नित रहे देश–नैया के कुशल खिवैया ऋषिवर दयानंद।।

तुमने जो फूँका मंत्र, राष्ट्र के आँगन में साकार हुआ,
तुमने जिस मिट्टी के ढेले को छुआ वही अंगार हुआ,
तुमने जो बोये बीज देश रत है उनके ही बोने में,
वेदों का ध्वज लहराता है दुनिया के कोने–कोने में ,
वह अमिट रहेगा संसृति में तुमने जो यश विस्तारा है।
पथ–दर्शक सबका बना आज, 'सत्यार्थ प्रकाश' तुम्हारा है।।

तुम दुखी बाल–विधवाओं के भोले मुख की मुस्कान बने,
अपनाकर दलित–अछूतों को मानव से देव महान् बने,
जीवन के रोते पतझर में, तुम खिला गए मधुमास नया,
अपने साहसमय कृत्यों से लिख गए एक इतिहास नया,
इस धरती का कण–कण गरिमा के गीत तुम्हारें गाएगा।
ये देश तुम्हारे उपकारों से उऋण नहीं हो पाएगा।।

–✍ महावीर प्रसाद 'मधुप'

वैराग्य का उदय तृष्णा, मोह और स्वार्थ त्याग के बाद होता है

– ✍ शकुंतला देवी

ऋषि पिप्पलाद ने राजा अंगिरस को वैराग्य की स्थिति, कारण और उपाय बताते हुए साधना करने का उपदेश दिया। अंगिरस ने ऋषि के चरणों में उपदेश के बदले दान–दक्षिणा देकर आशीर्वाद लेना चाहा। लेकिन ऋषि ने दान लेने से मना कर दिया। ऋषि बोले – ''महाराज,' मैंने वैराग्य की युक्ति, स्थिति और कारण बताकर कोई बहुत बड़ा उपकार नहीं कर दिया, बल्कि यह मेरा कर्तव्य था। अब आपका कर्तव्य है कि मेरे दिए गए उपदेश को अपनी जिंदगी का हिस्सा बनाकर अपने जीवन को संवारें। राजा को ऋषि के वचन काबिल और जिंदगी के मकसद को पूरा करने वाले लगे। वह सोचने लगे, ऋषि ने तृष्णा को छोड़ने के उपाय के तहत जरूरतों से दूर रहने की बात कही है, लेकिन यह संभव कैसे है? जब तक जिंदगी है, जरूरतें तो बनी ही रहेंगी। लेकिन जरूरतों को बढ़ाते जाना ऋषि ने तृष्णा, मोह और स्वार्थ का कारण बताया। वह चेतना शक्ति पर ध्यान देने लगे। चेतना शक्ति का लगातार मजबूत होते जाने से विषयों और विकारों के प्रति लगाव खत्म होने लगता है। बस, चेतना शक्ति की मजबूती की ओर गौर करना वैराग्य के लिए जरूरी है।

भगवान श्री कृष्ण ने गीता में वैराग्य जिंदगी की परिपूर्णता के लिए जरूरी माना है। वैराग्य किसके–किसके प्रति? कपड़ा, गहने, अच्छा भोजन, खूब धन की आमद, दूध–पूत की पूर्णता या भोग–वासना के प्रति विरक्ति? मान लिया, इन सभी सांसारिक वस्तुओं और विषयों के प्रति वैराग्य का भाव आ भी जाए तो क्या सांसारिकता के प्रति वैराग्य हो सकता है? इस सवाल पर खुले मन से चिंतन करना चाहिए। सांसारिकता के बगैर जिंदगी का कोई मतलब नहीं, फिर सांसारिकता के प्रति वैराग्य कैसे हो सकता है ? संसार में रहना है तो जिंदगी जीने के लिए कुछ जरूरतें तो रखनी पड़ेंगी। इस बारे में चिंतन करते हुए अपनी स्थिति को अपने अनुरूप बनाने की कोशिश करनी चाहिए। वासनाओं और विषयों की घुड़दौड़ में जिंदगी गुजर जाती है, लेकिन न वासनाओं से संतुष्टि होती है और न तो विषय ही खत्म होते हैं। इन दोनों के कारण ही जरूरतों का सिलसिला चलता रहता है। और यह सिलसिला इंसान को वासनाओं और विषयों का रोगी बना देता है। और यह रोग तृष्णा, मोह और स्वार्थ पैदा करता है।

अब आप यह कहेंगे कि संसार में रहना ही दुख और तृष्णा को बढ़ाने की वजह है। और बिना संसार में रहे क्या जिंदगी बिताई जा सकती है? इस सवाल पर विचार करें। जब लगे कि संसार का रिश्ता इंसान से आनन्द का भी हो सकता है तो उस आनन्द की ओर आगे बढ़िए जो वैराग्य के जरिए मिलता है। लेकिन समझना यह है कि क्या केवल वैराग्य के विचार से वैराग्य का भाव चेतना में पैदा होने लगता है? यह भी एक बड़ा गम्भीर सवाल है। इस सवाल का जवाब, यदि खुद से मिल जाए तो समझिए आगे का रास्ता निष्कंटक है। एक आनंद विचारों और वृतियों के जरिए कैसे मिल सकता है, इस पर भी सोचने की जरूरत है। लेकिन हमारी सोच में किसी तरह का पेंच नहीं होना चाहिए। पेंच संस्कारों और वासनाओं के बढ़ते जाने से फँसता है। इससे पार पाना ही वैराग्य है जिसे साधना के जरिए हासिल किया जा सकता है।





14 वर्ष की उम्र में ही अपने को "आज़ाद" कहते थे, उसी उम्र में उनको बेंत की सज़ा मिली हर बेंत पर "भारत माता की जय" बोलते रहे। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी

चन्द्रशेखर आज़ाद जी

की पुण्यतिथि 27 फरवरी (1931) पर आज़ादी के दीवाने को श्रद्धापूर्वक कोटिशः नमन



आर्य परिवार संस्था, कोटा